

द्वैध शासन से आप क्या समझते हैं

1919 ई. के भारत सरकार अधिनियम द्वारा प्रांतीय सरकार को मजबूत बनाया गया और द्वैध शासन (diarchy) की स्थापना की गई. 1919 के पहले प्रांतीय सरकारों पर केंद्र सरकार का पूर्ण नियंत्रण रहता था. लेकिन अब इस स्थिति में परिवर्तन लाकर प्रांतीय सरकारों को उत्तरदायी बनाने का प्रयास किया गया. इस द्वैध शासन का एकमात्र उद्देश्य था – भारतीयों को पूर्ण उत्तरदायी शासन के लिए प्रशासनिक शिक्षा देना. द्वैध शासन के प्रयोग ने भारत में एक नया ऐतिहासिक अध्याय प्रारंभ किया. असम, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, बम्बई, मध्य प्रांत, पंजाब, मद्रास, संयुक्त प्रांत और बर्मा में यह नयी व्यवस्था लागू की गयी.

इस अधिनियम द्वारा केंद्र एवं प्रान्तों के बीच विषयों का बँटवारा किया गया और जो विषय भारत के हित में थे, उन्हें केन्द्रीय सरकार के अधीन रखा गया. प्रतिरक्षा, यातायात, विदेश नीति, सीमा शुल्क, मुद्रा, सार्वजनिक ऋण इत्यादि को केन्द्रीय विषय में सम्मिलित किया गया. स्थानीय स्वशासन सार्वजनिक, स्वास्थ्य, सफाई और शिक्षा, पुलिस, जेल तथा सहकारिता आदि को प्रांतीय विषय के अधीन रखा गया.

द्वैध शासन के अंतर्गत नियम (SYSTEM UNDER DIARCHY)

अधिनियम में की गई व्यवस्था के अनुसार प्रांतीय सरकार केंद्र सरकार के नियंत्रण तथा निर्देशन में कार्य करती थी. सभी महत्वपूर्ण विषयों की सूचना उसे केंद्र सरकार को देनी पड़ती थी. क्रांतिकारी संगठनों को दबाने के लिए केंद्र सरकार जो आदेश जारी करती थी उसे प्रांतीय सरकार को अनिवार्य रूप से मानना पड़ता था. प्रान्तों को वित्त सम्बन्धी कुछ अधिकार दिए गए थे और वह कुछ विषयों पर अलग कर (tax) लगाकर अपने खर्चे के लिए पैसा जमा कर सकती थी. इससे प्रांतीय वित्त व्यवस्था में आत्मनिर्भरता आई. प्रान्तों में हस्तांतरित विषयों का शासन चलाने के लिए एक गवर्नर होता था जो अपने अधीन कुछ मंत्रियों की नियुक्ति करता था. गवर्नरों को 1919 के अधिनियम में एक निर्देश पत्र जारी किया गया था जिसमें मंत्रियों की सलाह मानने तथा जन-प्रतिनिधियों की इच्छा पर ध्यान देने का आग्रह किया गया था. मंत्रियों के विचार के विरुद्ध भी गवर्नर हस्तांतरित विषय के सम्बन्ध में कोई निर्णय ले सकता था.

द्वैध शासन के अंतर्गत जिस द्वैध शासन की स्थापना हुई उसमें प्रांतीय विधानमंडल के अधिकार और कार्य में परिवर्तन किये गए थे. विधानपरिषद् की सदस्य संख्या बढ़ाई गई तथा दो सदन के सिद्धांत को स्वीकार किया गया. **विधानपरिषद् का कार्यकाल तीन वर्षों का था.** निर्धारित अवधि के पहले भी गवर्नर विधानपरिषद् को भंग कर सकता था. प्रांतीय विधानपरिषद् को शासन के लिए कानून बनाने का अधिकार प्राप्त था. साधारण कानून बनाने के लिए उसे गवर्नर जनरल की पूर्वानुमति नहीं लेनी पड़ती थी. विशेष महत्वपूर्ण विषयों पर कानून बनाने के लिए गवर्नर जनरल की अनुमति आवश्यक थी. गवर्नर विधानपरिषद् के किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए भेज सकता था. वित्त पर अंतिम निर्णय गवर्नर का ही रहता था. कार्यकारिणी परिषद् के सदस्य को हटाने का अधिकार विधानपरिषद् को नहीं था; वह केवल प्रश्न एवं पूरक प्रश्न पूछ सकती थी और काम रोको प्रस्ताव पास कर सकती थी. द्वैध शासन के कारण विधानपरिषद् की कार्यवाही में अनेक प्रकार की त्रुटियाँ थीं. विधानपरिषद् में अनेक सम्प्रदाय, वर्ग और हितों को विशेष प्रतिनिधित्व देकर देश की राष्ट्रीय एकता को चोट पहुँचाई गई.

द्वैध शासन की असफलता (FAILURE OF DIARCHY SYSTEM)

द्वैध शासन असफल रहा. इसकी विफलता कई कारणों से हुई थी. इसने खुद सरकार के अन्दर ही कई मतभेद पैदा कर दिए. इसका एक भाग उत्तरदायी और दूसरा अनुत्तरदायी था. यह गलत सिद्धांत पर आधारित था और प्रांतीय विषयों का विभाजन दोषपूर्ण था. गवर्नर को कोई वास्तविक अधिकार नहीं दिया गया था. प्रांतीय सरकार को हमेशा

वित्तीय कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था और सुधारों के प्रति हमेशा ब्रिटिश सरकार की उदासीन नीति के कारण द्वैध शासन सफल नहीं हो सका। इस व्यवस्था में सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना का पूर्णतया अभाव था और मंत्री तथा लोक सेवकों के बीच बराबर तनावपूर्ण सम्बन्ध बना रहता था। इस प्रकार आंशिक उत्तरदायी शासन यानी द्वैध शासन हर दृष्टिकोण से असफल रहा। यह एक अधूरी योजना थी जो भारत के लिए एक मजाक का विषय ही बनी रही।

1919 के अधिनियम से सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन प्रांतीय प्रशासन में आया। जैसा कि **मोंटफोर्ड रिपोर्ट** में कहा गया था और प्रस्तावना में भी दुहराया गया था। "प्रांत में उत्तरदायी सरकार स्थापित करने के लिए कदम उठाए जाने चाहिये जिससे हम अपने उत्तरदायित्व को ध्यान में रखते हुए उन्हें अधिकाधिक वैधानिक तथा प्रशासनिक स्वतंत्रता प्रदान कर सकें।" इसी उद्देश्य से प्रांतों में द्वैध प्रशासनिक प्रणाली (diarchy system) की स्थापना की गयी।

इसके मुख्य बिन्दु निम्न हैं –

1. द्वैध प्रशासनिक प्रणाली के अन्तर्गत प्रांतीय विषयों को दो भागों में बांट दिया गया- आरक्षित (Reserved) और हस्तांतरित (Transferred). आरक्षित विषयों का प्रशासन गवर्नर अपने उन पार्षदों की सहायता से करता था जिन्हें वह मनोनीत करता था और वे विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी नहीं थे।

हस्तांतरित विषयों का प्रशासन गवर्नर उन मंत्रियों की सहायता से करता था जिन्हें वह निर्वाचित सदस्यों में से नियुक्त करता था। ये लोग सदन के प्रति उत्तरदायी थे, परन्तु गवर्नर की इच्छा पर ही पदों पर बने रह सकते थे। सपरिषद राज्य सचिव तथा सपरिषद गवर्नर जनरल को इन विषयों में हस्तक्षेप करने का अधिकार बहुत सीमित था। परन्तु आरक्षित विषयों में यह अधिकार पूर्ववत् बना रहा।

आरक्षित विषय थे – वित्त, भूमिकर, अकाल सहायता, न्याय, पुलिस, पेन्शन, आपराधिक जातियां, छापाखाने, समाचार पत्र, सिंचाई तथा जलमार्ग, खानें, कारखाने, बिजली, गैस, श्रमिक, कल्याण, औद्योगिक झगड़े, मोटरगाड़ियां, छोटे बन्दरगाह, अपवर्जित क्षेत्र तथा सार्वजनिक सेवाएं।

हस्तांतरित विषय थे – शिक्षा, पुस्तकालय, संग्रहालय, स्थानीय स्वायत्त शासन, चिकित्सा, कृषि, सहकारी समितियाँ, पशु चिकित्सा सार्वजनिक निर्माण, आबकारी, उद्योग, मापतौल, मनोरंजन, धार्मिक तथा अग्रहार दान आदि।

2. प्रांतीय विधान मंडलों में भी परिवर्तन हुए। प्रांतीय परिषदों को अब विधान परिषदों की संज्ञा दी गई। उनका अधिकार क्षेत्र बढ़ा दिया गया जो कि सभी प्रांतों में भिन्न-भिन्न था। इन प्रांतीय परिषदों में कम से कम 70% सदस्य निर्वाचित होते थे। 20% से अधिक शासकीय नहीं थे तथा शेष मनोनीत होते थे। प्रांतों में संख्या इस प्रकार थी।

3. प्रांतीय विधान परिषदों की चुनाव की विधि प्रत्यक्ष (direct) थी। प्राथमिक मतदाता सदस्यों को चुनते थे, परंतु मतदाताओं के लिए अधिक संपत्ति की योग्यताएं, सांप्रदायिक तथा वर्गीय चुनाव मंडलों को तथा कुछ संप्रदायों को विशेष महत्त्व देना इन चुनावों की विशेषता थी।

4. प्रांतीय विधान परिषदों के कार्यक्षेत्र में भी विस्तार हुआ। सदस्यों को बोलने का अधिकार एवं स्वतंत्रता थी। वे प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते थे, प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ सकते थे। किसी भी प्रांतीय विषय पर कानून बनवा सकते थे तथापि प्रत्येक पारित विधयेक पर गवर्नर की सहमति आवश्यक थी। यद्यपि सदस्य **बजट** को भी अस्वीकार कर सकते थे तथापि गवर्नर चाहे तो उसे उनकी अनुमति के बिना भी पारित कर सकता था। यह द्वैध शासन प्रणाली, जो पहली

अप्रैल 1921 को आरंभ की गई, पहली अप्रैल 1927 तक चलती रही। यद्यपि बंगाल में 1924 से 1926 तक और मध्य प्रांत में 1924 से 1926 तक यह कार्य नहीं कर सकी।

द्वैध शासन प्रणाली से उत्पन्न दोष

1. प्रशासन को दो स्वतंत्र भागों में बांटना, राजनीति के सिद्धांतों तथा व्यवहार के विरुद्ध था। विषयों का आरक्षित और हस्तांतरित होना भी अव्यावहारिक था क्योंकि मंत्री अथवा कार्यकारी पार्षद एक-दूसरे से स्वतंत्र रहकर कार्य नहीं कर सकते थे। उदाहरण के लिए सिंचाई तो आरक्षित विषय था, पर कृषि हस्तांतरित; परन्तु स्पष्ट है कि दोनों एक दूसरे से अभिन्न हैं। इसी प्रकार उद्योग को जो हस्तांतरित था, जलशक्ति, कारखानों एवं खानों जो आरक्षित थे, कैसे पृथक् किया सकता था।
2. दोनों शाखाओं के बीच उद्देश्य की एकता भी नहीं हो सकती थी। उदाहरण के लिए जब सिख गुरुद्वारों का आन्दोलन चल रहा था तो प्रश्न शांति और व्यवस्था का था। परन्तु धार्मिक संस्थान चूंकि हस्तान्तरित विषय था, इसलिए शांति और व्यवस्था को कार्यकारी पार्षद कुछ नहीं कर सकते थे। कई बार तो यह भी स्पष्ट नहीं था कि कौन-सा विषय हस्तान्तरित है और कौन सा आरक्षित।
3. प्रायः प्रशासन के दोनों भाग आपस में विरोधी होते थे। मंत्री लोग जनता के प्रतिनिधि थे और जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से आते थे और कार्यकारी पार्षद नौकरशाही के लोग होते थे। कई बार वे सार्वजनिक रूप से एक दूसरे की आलोचना करते थे और गवर्नर सदैव कार्यकारी पार्षदों का ही समर्थन करता था।
4. एक प्रकार से मंत्री की स्थिति बहुत गंभीर थी। उसे दो स्वामियों को प्रसन्न करना होता था। गवर्नर को जो उसे नियुक्त करता था और जिसकी इच्छा पर वह मंत्री बना रहता था और विधान परिषद को जो उसे अपना प्रतिनिधि समझती थी और जिसकी इच्छा से ही प्रायः वह मंत्री बना रह सकता था। अतएव प्रायः मंत्री लोग गवर्नर की इच्छा के अनुकूल ही कार्य करते थे। चूंकि विधान परिषद में कोई भी शक्तिशाली दल नहीं होता था, इसलिए मंत्री को अपनी स्थिति सुदृढ़ रखने के लिए शासक वर्ग की सहायता लेनी पड़ती थी और मंत्री लोग सरकार के ही पक्षपाती होते थे। गवर्नरों ने स्वयं ही संयुक्त उत्तरदायित्व को पनपने नहीं दिया। कई बार मंत्री लोग भी आपस में एक दूसरे की आलोचना करते थे।
5. कई महत्वपूर्ण विषयों में तो मंत्री से मंत्रणा भी नहीं की जाती थी। इसके अलावा मंत्रियों को अपने विभाग पर भी पूर्ण नियंत्रण नहीं होता था। विभागीय सचिव जो नौकरशाही से होता था, गवर्नर से साप्ताहिक बैठक करता था। प्रायः उसका सुझाव (मंत्री का नहीं) गवर्नर को मान्य होता था। जब कभी भी मंत्री और अधिकारियों में मतभेद होता था, मामला गवर्नर के पास जाता, और वह अधिकारी वर्ग का समर्थन करता।
6. अखिल भारतीय सेवाओं का वतेन, निलम्बन, पदच्युति अथवा हस्तांतरण भारत सचिव के हाथों में था। हस्तांतरित विभागों में कार्य करते हुए भी वे उसी के अधीन थे, अतएव वे मंत्रियों की रत्तीभर की अपेक्षा नहीं करते थे।
7. बाह्य रूप से निर्माणकारी विभाग मंत्रियों को दे दिए गए थे, परन्तु उसके लिए प्रायः धन नहीं होता था। अतएव मंत्रियों को वित्त सदस्य के तलवे चाटने पड़ते थे और वित्त सदस्य आरक्षित विभागों की आवश्यकताओं की ओर अधिक ध्यान देता था और जब चाहे हस्तांतरित विभाग के कार्य में रोड़ा अटका सकता था। इन सभी त्रुटियों के अतिरिक्त और भी कई रुकावटें थीं। पंजाब में भीषण घटनाओं के कारण सारा वातावरण ही दूषित हो गया था। वर्षा के अभाव में सूखा पड़ा तो दूसरी ओर मण्डी में अत्यधिक मन्दी आ गई। इससे सरकार की आय पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। मेस्टन निर्णय के अनुसार प्रांतों को केन्द्रीय कोष में धन देना होता था। केन्द्र अपना पूरा भाग बांटता था और इस कारण वित्तीय संकट आ गया जिससे प्रांतीय द्वैध शासन को पूर्णरूपेण सफलता नहीं मिली।